छात्र-अध्यापक सम्बन्ध

□ साध्वी श्री गुणितप्रभा
(युगप्रधान आचार्य श्री तुलसी की शिष्या)

जीवन शब्द के दो अर्थ हैं—एक पानी और दूसरा प्राण-धारण करने वाली शक्ति। मोती में जब तक पानी रहता है, तब तक उसका मूल्य होता है। पानी उतर जाने के बाद उसकी कोई कीमत नहीं होती। ठीक उसी प्रकार उचित अनुष्ठान एवं उचित कार्यों से ही जीवन का मूल्य होता है। अन्यथा उसका कोई मूल्य नहीं होता। ऐसा मूल्यवान् जीवन बनाने के लिए किसी सहयोगी, निर्देशक और शिक्षक की अपेक्षा होती है, क्योंकि अकेला व्यक्ति मात्र अहं का भार ढो सकता है, पर विकास का मार्ग उसका रुक जाता है।

जैसे एक हाथ से ताली नहीं बजती, एक पहिये से गाड़ी नहीं चल सकती तथा एक पंख से पक्षी गगन में नहीं उड़ सकता। ठीक उसी प्रकार परिवार, समाज एवं राष्ट्र को ऊँचा उठाने के लिए केवल एक विद्यार्थी, एक अध्यापक या एक नेता कुछ नहीं कर सकता। सब मिलकर सब कुछ कर सकते हैं। अतः अपेक्षा है विद्यार्थी वर्ग अपने आपको देखे और चिन्तन करे—हम देश में भावी विभूति एवं कर्णधार माने जाते हैं। अतः हमारा कर्तव्य है कि गुरु के निर्देश का पालन करें और उत्तरोत्तर विकास करें। गुरु की शिक्षा को शिष्य इस प्रकार धारण करें। एक श्लोक में बताया है कि—

गुरोः वाक्यं प्रतीक्षेत मनस्यामोदमादधत्।
मुक्ताहार इवा कण्ठे स्वापयेत तत्सभादरात्॥

किन्तु इसके साथ-साथ हम यह चिन्तन करें कि विद्या का फल मस्तिष्क-विकास है, किन्तु है प्राथमिक। उसका चरम फल आत्म-विकास है। मस्तिष्क-विकास चरित्र के माध्यम से आत्म-विकास तक पहुँच जाता है। अतः चरित्र-विकास दोनों के बीच की एक कड़ी है। विद्या का साधन केवल पुस्तकीय ज्ञान हो, यह वांछनीय नहीं है। मुख्यवृत्या आत्मानुशासन की साधना होनी चाहिये। बहुश्रुतता के बिना जीवन सरस नहीं बनता वैसे ही आत्मगुप्तता या स्थितप्रज्ञता के बिना जीवन में शान्ति नहीं आती।

इसलिये दशवैकालिक सूत्र में बताया है कि विद्यार्थी विद्या श्रुत-प्राप्ति के लिए पढ़े, एकाग्रचित्त बनने के लिए पढ़े, आत्मस्थ बनने के लिए पढ़े एवं दूसरों को आत्मस्थ बनाने के लिए पढ़े। यह सब कब हो सकता है जब विद्यार्थी का जीवन जागृत हो। विद्यार्थियों के सुप्त मानस को जगाने के लिये अपेक्षा है पहले अध्यापकवर्ग जागृत बने। उनका जीवन शालीन, व्यसनमुक्त हो तथा विद्यार्थियों के मध्य रहकर उन्हें भी कोई ऐसी बात नहीं करनी चाहिये, जिससे उन पर कुसंस्कार पड़ें। अन्तर् में वात्सल्य एवं ऊपर से पूर्ण नियन्त्रण हो तब विद्यार्थियों का पूर्ण सुधार होगा और गुरु का सच्चा गुरुत्व होगा अन्यथा 'केवलेनोपदेशेन निश्चित वाग्विडम्बना' वाली बात होगी।

अध्यापकों तथा विद्यार्थियों दोनों का कर्त्तव्य है कि परस्पर विनय और वात्सल्य का सामंजस्य रखें तथा अपने को कोई भी बड़ा न माने यदि माने, तो वैसा ही माने जैसे दीपक बड़ा हो गया, अर्थात् विकास रुक गया। अहंकारी व्यक्ति के सामने सफलता की गुंजाइश नहीं रहती। अतः अपने को विद्यार्थी ही माने। विद्या + अर्थी = विद्यार्थी। अतः विद्या सभी चाहते हैं। विद्या तो जीवन की दिशा है। जिसे पाकर मनुष्य अपने इष्ट स्थान पर पहुँच

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सकता है और चरित्र है जीवन की गति। सही दिशा मिल जाने पर भी गतिहीन मनुष्य इष्ट स्थान तक पहुँच नहीं पाता। सही दिशा और गति दोनों मिलें तब पूरा काम बनता है। चरित्रहीन विद्या विद्यार्थी के लिए वरदान नहीं बन पाती है पर आजकल कुछ और ही देखा जा रहा है। विद्या के लिए जो भरसक प्रयत्न हो रहा है उतना चरित्र के लिए नहीं हो रहा है।

हर विद्यार्थी भील-पुत्र एकलव्य के जीवन को याद करे कि गुरु के प्रति उसकी श्रद्धा, विनय एवं समर्पण कैसा था, तथा विनय से उसने कितना ऊँचा स्थान प्राप्त किया था। कबीरदासजी ने कितना सुन्दर कहा है कि—

हरि रूठै गुरु ठोर है, गुरु रूठै नहीं ठौर।
कबीरा ते नर अन्ध हैं, गुरु को समझे और॥

अतः गुरु के इंगित एवं अनुशासन पर चलने वाले छात्र का जीवन वैसे ही चमकता है, जैसे अग्नि में तपाया हुआ सोना। सोने को तपाते, पिघालते एवं कसौटी पर कसते हैं तब उसकी सच्चाई प्रकट होती है। उसी प्रकार जो बच्चे अपने पूज्यजनों की डाँट-फटकार सुनकर भी विनम्र रहते हैं, वे अच्छे आदमी बन सकते हैं। एक आचार्य ने अपने शिष्य से कहा—"जाओ सामने जो काला नाग दिखाई दे रहा है उसे नाप कर आओ।" शिष्य बिना हिचकिचाहट वहाँ गया और साँप के चले जाने पर उस स्थान को नाप कर आ गया। आचार्य ने दूसरी बार आदेश दिया—"जाओ उसके दाँत गिनकर आओ।" आज्ञा सुनकर शिष्य को जरा भी भय नहीं हुआ कि सर्प मुझे काट लेगा। वह अत्यन्त सहजभाव से गया और साँप का मुँह पकड़कर दाँत गिनने लगा। सर्प ने दो बार उसके हाथ को काट लिया किन्तु वह दाँत गिनने में लगा रहा। दाँत गिनकर वह गुरु के पास पहुँचा। गुरु ने पूछा—दाँत गिनकर आये हो। शिष्य की स्वीकृति सुनकर गुरु ने पूछा—कहीं सर्प ने काटा तो नहीं? शिष्य ने अपना हाथ दिखाते हुये कहा—यहाँ दो बार काटा है। आचार्य आश्वस्त होकर बोले—भय की कोई बात नहीं है, जाओ कम्बल लपेटकर सो जाओ। थोड़ी देर बाद देखा गया कि कम्बल एक विशेष प्रकार के कीड़ों से भर गया है। कीड़ों को देखने से पता चला कि उसके शरीर में एक भयंकर रोग था उसका शमन सर्प के जहर से हो गया था। आचार्य ने अपने शिष्य को स्वस्थ बनाने के लिए प्रयोग किया था किन्तु इसका किसी को भी पता नहीं था, जब वह रहस्य खुला तो दूसरे शिष्य अपने साथी की अनुशासनप्रियता पर विस्मित हुए।

यहाँ पर शिष्य में शिष्यत्व था और गुरु में गुरुत्व। वस्तुतः अनुशासनहीनता विद्यार्थी के विकास में अवरोध बन जाती है। अनुशासनहीनता के कई कारण हैं—कुछ कारण अध्यापकों एवं अभिभावकों से सम्बन्धित हैं, कुछ कारणों का सम्बन्ध विद्यार्थियों से है। अध्यापकों एवं अभिभावकों से सम्बन्धित कारण हैं—अधिक दुलार, अतिनियन्त्रण, उत्तरदायित्व का अधिकार, कहने व करने में द्विरूपता एवं दूषित वातावरण। बच्चों से सम्बन्धित कारण हैं—कुसंगति, शिकायत की आदत तथा अध्यापकों एवं अभिभावकों के प्रति अश्रद्धा।

उपर्युक्त कारणों के अतिरिक्त कुछ और भी कारण हैं जिनका सम्बन्ध समय और स्थिति से है। कुछ भी हो, अनुशासनहीनता ने जीवन-निर्माण की दिशा में बहुत बड़ी क्षति की है, इस क्षति की पूर्ति के लिए सबको सजग होना है तथा अनुशासननिष्ठा का परिचय देना है। इसमें सफलता भी मिलेगी जब अध्यापक अपना कर्त्तव्य समझकर बच्चों में सुसंस्कार भरेंगे एवं विद्यार्थी विनय, श्रद्धा और समर्पण से विद्या के साथ मनन एवं आचरण करेंगे क्योंकि—

विचार का चिराग बुझ जाने से आचार अन्धा हो जाता है।
आचार का चिराग बुझ जाने से व्यवहार अन्धा हो जाता है।
परिष्कार की मशीन जीवन के चौराहे पर फिट हो।
क्योंकि व्यवहार का चिराग बुझ जाने से जीवन गंदा हो जाता है॥

□

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org